3 क्या शास्त्रों को चुनौती दी जा सकती है?

–शंका समाधान–

प्रश्न–आजकल समाज में, खासकर साधु वर्ग में काफी हल्ला है कि आपने शास्त्रों को चुनौती दी है?

उत्तर–मैंने तो शास्त्रों को चुनौती नहीं दी है। भला शास्त्रों को मैं या और कोई भी चुनौती कैसे दे सकता है? शास्त्र का अर्थ धर्मशास्त्र है। यह एक ऐसा शब्द है, जिसके पीछे साधक की पवित्र धर्म-भावना रही हुई है। आध्यात्मिक जीवन की प्रेरणाओं का मूल स्रोत है शास्त्र। वस्तुतः वही भगवद्वाणी है। आध्यात्मिकता से शून्य कोरे भौतिक वर्णन ग्रन्थ हो सकते है, शास्त्र नहीं। यदि कोई चुनौती दे सकता है तो वह ग्रन्थों को दे सकता है, शास्त्रों को नहीं।

सर्वप्रथम फरवरी 1969 में प्रकाशित मेरे लेख का शीर्षक ही है 'क्या शास्त्रों को चुनौती दी जा सकती है? ' उक्त शीर्षक में 'क्या' का प्रयोग ही बता रहा है कि शास्त्रों को चुनौती नहीं दी जा सकती। और इस बात का स्पष्टीकरण मैंने उस लेख में ही कर दिया था। फिर भी पता नहीं, लोग ऐसा क्यों कहते है? लोगों की बात छोड़िए, बात है संयमी मुनिराजों की। क्या तो उन्होंने पूरा लेख पढ़ा नहीं है, यदि पढ़ा है तो उसे अच्छी तरह समझा नहीं है। और तो क्या शीर्षक का भाव भी अच्छी तरह नहीं समझ सके हैं। यदि वस्तुतः समझ गए हैं तो उनके मन में कुछ और ही बात है। क्या बात है, मैं क्या बताऊँ।

प्रश्न–सम्यग् दर्शन (सैलाना) आपके सम्बन्ध में उक्त लेख को लेकर बड़ी अभद्र चर्चा कर रहा है। डोशी जी काफी बौखलाये हुए हैं। आप इस सम्बन्ध में क्या सोचते है?

उत्तर–मैं क्या सोचता हूँ, मुझे तो कुछ पंक्तियाँ पढ़ते ही हँसी आने लगती है। भद्र या अभद्र का कोई प्रश्न नहीं, चर्चा तो हो। पर वह तो चर्चा ही नहीं है। गालियाँ देना, चर्चा नहीं है। मनुष्य जब अन्दर में रिक्त हो जाता है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिकार के लिए जब उसे कोई ठोस तर्क, युक्ति या प्रमाण नहीं मिलता, तो वह अभद्र शब्दों का प्रयोग कर अपने मन की कुण्ठा और खीझ बाहर निकालता है। और कुछ नहीं।

श्री डोशीजी क्या कहते हैं, इसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं। निन्दा और गालियों से, जो डोशी जी जैसे आलोचकों के ब्रह्मास्त्र है, मैंने न कभी अपना पथ बदला है, न बदलूँगा। मुझे अपनी प्रतिष्ठा उतनी नहीं, जितनी कि सत्य की प्रतिष्ठा प्रभावित करती है। मैं यदि चाहता तो सस्ती लोकप्रियता अपने साथियों से भी कहीं अधिक बटोर सकता था। मैं ऐसा कोई बुद्धु नहीं हूँ, जो यह सब न समझ पाता हूँ। तथाकथित लोकप्रियता, श्रद्धा, भक्ति और जय-जयकार बहुत ही सस्ते दामों में मिल सकते हैं। इसके लिए मुझे कुछ नहीं कँरना होता, केवल जन-साधारण की 'हाँ में हाँ' मिलानी होती है, जी-हुजूरी करनी होती है, प्रचलित परम्पराओं के प्रति श्रद्धा सुरक्षित रखने की दुहाई देनी होती है, बस ! पर, यह सब करना, मेरे रक्त में नहीं है।

प्रश्न—कुछ लोग कहते हैं कि आप डोशी जी को उत्तर क्यों नहीं देते?

उत्तर—किस बात का दूँ? उच्चस्तरीय कोई सुन्दर विचार चर्चा हो, शालीनता के साथ शंका-समाधान का प्रसंग हो तो मैं इसके लिए सहर्ष तैयार हूँ। केवल डोशी जी ही नहीं, हर किसी के साथ विचार क्षेत्र में उतर सकता हूँ। परन्तु श्री डोशी जी विचार-चर्चा कहाँ करते हैं? गालियाँ देते हैं, और वह भी बहुत फूहड़पन से। आप ही बताइये, इन गालियों का क्या उत्तर दूँ मैं? श्री डोशी जी गाली दे सकते है, चूँकि उनके पास गालियाँ हैं। मेरे पास गालियाँ है ही नहीं, दूँ तो क्या दूँ? जिसके पास जो है, वह वही तो दे सकता है। जो नहीं है, वह कैसे दे सकता है? इसी भाव का एक प्राचीन श्लोक है, सम्भव है, कभी आपने पढ़ा हो या कहीं सुना हो :

"ददतु ददतु गालीर्गालिमन्तो भवन्तो,
वयमिह तदभावाद् गालिदानेऽप्यशक्ताः।
जगति विदितमेतद् दीयते विद्यमानं,
न हि शशक-विषाणं कोऽपि कस्मै ददाति।।"

प्रश्न—अमरीकनों द्वारा की गई चन्द्रयात्रा के संबंध में डोशी जी ने जो लिखा है, वह आपके विचार में क्या है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर–गत फरवरी की अमर भारती में सर्व प्रथम इस दिशा में मैंने ही चर्चा उठाई थी। मेरा आशय था–चन्द्रयात्रा के लिए वैज्ञानिक प्रयत्न प्रगतिशील है। हमारे चन्द्र-प्रज्ञप्ति आदि कुछ सूत्र, जो भगवान् महावीर के बहुत समय पश्चात् इधर-उधर से संकलित किये गये हैं, उनकी मान्यताएँ गलत प्रमाणित हो रही हैं और होंगी। अतः उन्हें आचार्यकृत माना जाए, वे भगवद्वाणी नहीं हैं। वस्तुतः वे भगवद्वाणी हैं भी नहीं। मैंने अनेक पुष्ट प्रमाणों के साथ अपना विचार पक्ष उपस्थित किया था। डोशी जी उसे मेरी धृष्टता कहते हैं और लगभग छह महीने की बड़ी लम्बी अवधि के बाद 5 अगस्त 1969 में आकर उत्तर देने के लिए अपने पवित्र लेखन का श्रीगणेश करते हैं। इस बीच उन्हें श्री प्रभुदास भाई और शंकराचार्य जी की ओर से कुछ लिखा जो मिल गया है, डूबते को तिनके का सहारा।

यह कुछ भी हो, मुझे इससे क्या लेना-देना है? प्रस्तुत की चर्चा है। सम्यग् दर्शन (5 सितम्बर 1969) में पहले तो डोशी जी यह शंका ही करते हैं, कि "जिसे वैज्ञानिक चन्द्रमा कह कर उस पर पहुँचना बतलाते है, वह वास्तव में चन्द्रमा ही है या और कुछ?" और फिर साथ ही उसी पंक्ति में कहते हैं कि "यदि मान लिया जाए कि वह चन्द्रमा ही है तो वैज्ञानिकों ने उसके ऊपर के एक हिस्से का कुछ दृश्य देखा और स्पर्श किया। समग्र रूप नहीं देखा।" आप देख सकते है यह भी कोई ढंग है कुछ लिखने का? डोशी जी को तो यह सिद्ध करना चाहिए था कि वैज्ञानिक चन्द्रमा पर नहीं गए हैं। क्योंकि इसके विरुद्ध हमारे शास्त्र के ये प्रमाण हैं, ये तर्क हैं। वैज्ञानिक झूठे हैं, परंतु डोशी जी तो 'यदि' की आड़ में बस झटपट चन्द्र पर जाना स्वीकार कर लेते हैं और आखिर तक स्वीकार के ही स्वर में बहकते रहते हैं।

डोशीजी चन्द्रमा को पहाड़ की उपमा देते हैं और देवताओं को उसके अंदर गुफा में बैठा हुआ-सा बतलाते हैं। बलिहारी है सूझबुझ की ! इसके लिए उन्होंने शास्त्र भी देखे हैं या नहीं? श्रद्धेय बहुश्रुत पं. समर्थमल जी महाराज से भी कभी पूछा है या नहीं? शास्त्र तो ऐसा नहीं कहते हैं। वे तो चन्द्रमा को स्फटिक रत्नों का विमान बताते हैं, और पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण में चार-चार हजार बैल, हाथी, घोड़े और सिंह जुते हुए कहते हैं। ये सब तो वैज्ञानिकों को नहीं मिले। मिले हैं पत्थर, मिली है काली भुरभुरी मिट्टी, जिसका उल्लेख डोशी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जी स्वयं करते हैं। वैज्ञानिकों ने इस दृश्य चन्द्रमा के ऊपर और नीचे से होकर कई चक्कर लगाये हैं। उन्हें कहीं भी हाथी, घोड़े नहीं मिले। डोशीजी कहते हैं अभी तो कुछ हिस्सा देखा है, सब नहीं। डोशीजी को और उनके साथियों को आशा है–आगे चलकर कहीं मिल जाएँ तो लाज रह जाए। इन लोगों की स्थिति महाभारत के दुर्योधन की-सी है, जो भीष्म, द्रोण, कर्ण जैसे महारथियों का युद्ध में मरण हो जाने पर भी बेचारे शल्य पर ही भरोसा किये बैठा रहा कि यह ही पाण्डवों को जीत लेगा। बेचारा दुर्योधन? **'मनोरथानामगतिर्न विद्यते।'**

थोड़ी दूर चल कर डोशीजी ने नवभारत, टाइम्स के आधार पर लौटते समय चंद्रयान की ओर से रेड इंडियनों की-सी रण-हुँकारों एवं प्रेतों जैसी हँसी की आवाजों के आने का उल्लेख किया है और उस पर से संभावित किया है–चन्द्रमा पर देवताओं का अस्तित्व। बिना किसी प्रमाण एवं तर्क के डोशीजी इसी अंक में बड़ी शान के साथ लिखते हैं–"क्या ये ध्वनियाँ देवों की या किसी एक देव की नहीं हो सकती? कविजी ने अमर भारती पृ.33 में चन्द्रदेव और देव-देवियों के अस्तित्व में भी अविश्वास फैलाया है, किन्तु उपर्युक्त अवतरण से देवों के अस्तित्व की संभावना प्रकट हो रही है।" हो रही होगी, डोशीजी के दिव्य उपजाऊ मस्तिष्क में। मालूम होता है–कहीं नवभारत को भी डोशीजी ने सर्वज्ञभाषित शास्त्र तो नहीं मान लिया है ! बुद्धिमान पाठक विचार कर सकते हैं– कितना छिछला प्रतिकार है? नेहरूजी की भाषा में कहा जाए तो यह निरा बचकानापन है और कुछ नहीं। बस ये दो चार बातें इधर-उधर की करने के बाद डोशीजी मूल प्रश्न से भटक गए हैं और अब तक भटके ही जा रहे हैं। कब तक भटकेंगे? मैं क्या कह सकता हूँ।

प्रश्न–लौटते समय चन्द्रयान की ओर से आनेवाली इन ध्वनियों के संबंध में कुछ मुनिराज भी इस विचार के हैं कि ये चन्द्रमा के पीछे दौड़ने वाले देवताओं की आवाजें हैं। आप क्या समाधान करते हैं इसका?

उत्तर–समाधान क्या करूँ? मुझे तो सुनते ही हँसी आती है इस बौद्धिक चिन्तन पर, प्रतिभा की प्रखरता पर। चन्द्रयान चन्द्रमा पर हो आया, यात्री चन्द्र तल पर इधर-उधर घूम आये, पत्थर खोद लाये और तब देवता कुछ नहीं बोले, कुछ नहीं प्रतिकार किया। और जब लौट रहे थे, तब पीछे दौड़े हा हा हू हू करते। क्या जरूरत थी, पीछे से शोर मचाने की? यदि देवता थे तो अपने संकल्प मात्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से वहाँ पर ही यान को पकड़ कर रख लेते, उसे नीचे आने ही नहीं देते और घोषणा करते नीचे आकर कि 'ऐ धरती के वासियों! खबरदार रहना। यदि तुमने चन्द्रमा पर उतरने का प्रयत्न किया, तो खैर नहीं तुम्हारी।'

श्री डोशीजी अधूरी बातें लिखते हैं। यह पुरानी आदत है उनकी। हिन्दुस्तान दैनिक में पहले दिन हमने भी ऐसा ही कुछ मिलता-जुलता पढ़ा था। किन्तु अगले ही अंकों में स्पष्टीकरण आया था चन्द्र यात्रियों का कि यह शोर और कुछ नहीं था। हम मनोविनोद के लिए अपने साथ चैक रिकार्ड ले गये थे। उन्हें ही बजा रहे थे। यह शोर उन्हीं रिकार्डों का था, जो दूर से कुछ विचित्र-सा सुनाई दे रहा था नीचे धरती वालों को। पूरे शब्द तो स्मृति में नहीं हैं, परन्तु वह चैक रिकार्ड की आवाज थी, इतना सुनिश्चित है। उन दिनों के हिन्दुस्तान दैनिक दिल्ली की फाइल निकाल कर कोई भी यह समाधान देख सकता है। मुझे खेद इस बात का है कि अपना झूठा पक्ष प्रमाणित करने के लिए डोशी जी जैसे श्रावक भी कितनी अधूरी बात लिखते हैं। क्या यह जनता को गुमराह करने वाला कदम नहीं है विचार-चर्चा के क्षेत्र में इस प्रकार के कदम बड़े ही गलत हैं। आखिर विचारक को प्रामाणिक तो होना ही चाहिए।

प्रश्न—आप वर्तमान में माने-जाने वाले 32 सूत्रों के अक्षर-अक्षर को प्रामाणिक तथा भगवान् की वाणी नहीं मानते? जबकि आपके प्रतिपक्षी दूसरे लोग मानते हैं, तो आप क्यों नहीं मानते?

उत्तर—तथाकथित शास्त्रों का अक्षर-अक्षर भगवान् का कहा हुआ है, वह शत-प्रतिशत प्रामाणिक है, इन आगमों में कुछ भी हेर-फेर नहीं हुआ है, मैं ऐसा नही मानता। भगवान् महावीर से 980 वर्ष बाद, जब कि बीच में अनेक दुष्काल पड़ चुके थे, स्मरण शक्ति क्षीण हो चुकी थी, जैनधर्म और जैन साहित्य पर दूसरे संप्रदायों का कुप्रभाव पड़ चुका था और पड़ रहा था, तब आगमों का संकलन, संपादन एवं लेखन हुआ। कोई भी विचारशील पाठक समझ सकता है— इतने लम्बे काल में क्या कुछ परिवर्तन एवं परिवर्द्धन हो सकते हैं। कितना क्या कुछ नया जोड़ा जा सकता है, घटाया-बढ़ाया जा सकता है। आगमों का मनन एवं चिन्तनपूर्वक स्वाध्याय करने वाला तटस्थ अध्येता जान सकता है कि वास्तविक स्थिति क्या है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री देवर्द्धि गणी बहुत बाद के आचार्य हैं, वे कोई विशिष्ट ज्ञानी नहीं थे, जो भूल न कर सके हों। अन्य आचार्य भी, जो उपांग आदि के निर्माता हैं, वे भी छद्मस्थ थे, अपने आस-पास की प्रचलित मान्यताओं से प्रभावित थे। तब यह कैसे दावा किया जा सकता है कि उनसे कोई भूल हो नहीं सकती। उपासक दशा सूत्र के अनुसार जब चार ज्ञान और चौदह पूर्व के धर्ता गौतम जैसे महान् गणधर आनन्द श्रावक के यहाँ भूल कर सकते हैं। भूल के लिए सत्यता का हठ पकड़ सकते हैं, तो फिर देवर्द्धि जैसे आचार्यों की तो बात ही क्या है? सत्य सत्य है, उसे मुँहफट होकर झुठलाते रहने से कोई लाभ नहीं है। हम पीछे के छद्मस्थ आचार्यों को व्यर्थ ही शास्त्र-मोह में आकर सर्वज्ञ न बनाएँ! वर्तमान आगमों में अनेक असंगत, जैन परम्परा के विरुद्ध तथा अश्लील उल्लेख हैं, जो प्रमाणित करते हैं कि इनका अक्षर-अक्षर भगवान् का कहा हुआ नहीं है। भगवान् का तो वही कहा हुआ है, जो आध्यात्मिक जीवन के विकास का उपदेश हे, जिसमें वीतराग साधना का स्वर है। इसके अतिरिक्त इधर-उधर के भौतिक वर्णन, भोगविलास के उल्लेख वीतराग का कहा हुआ बताना, वीतराग का अपमान है।

श्रद्धेय समर्थमलजी महाराज ने चन्द्र-प्रज्ञप्ति के मांस-प्रकरण को जोधपुर-चर्चा के समय प्रक्षिप्त माना था। 32 सूत्रों में केवल वही एक पाठ प्रक्षिप्त है या और भी हैं, स्पष्ट हाँ या ना में बहुश्रुतजी को सार्वजनिक रूप से उद्घोषित कर देना चाहिए।

पूज्य श्री हस्तीमलजी महाराज ने भी जिनवाणी पत्रिका में लिखा है कि "अर्ध मागधी या संस्कृत भाषा में होने मात्र से कोई शास्त्र आप्त वाणी या वीतराग वचन नहीं हो सकते, सत् शास्त्र ही मानव की इस निष्ठा का पात्र बन सकता है–मई, 1969। शास्त्र की कई एक बातें समझ के परे हों और यह भी संभव है कि कुछ प्रत्यक्ष के विरुद्ध भी प्रतीत हों। .... मानव जाति ने विश्व के विविध परिवर्तन देखे हैं। शास्त्रीय पुस्तकों में भी परिवर्तन आया हो, यह संभव है–जुलाई, 1969। अक्षर-अक्षर का एकान्त आग्रह हमें भी नहीं है, न किसी अन्य आगम प्रेमियों को। हम मानते हैं कि शास्त्रों में कुछ प्रक्षेप भी हुआ है और परिवर्तन भी–सितम्बर, 1969।" उनके अपने ही शब्दों में शास्त्र और परम्परा के समर्थक पूज्य श्री भी इस प्रकार अमुक अंशों में मेरे ही विचार-पथ के राही हैं। मैं इस पथ का अकेला यात्री कहा हूँ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री डोशीजी के महान् अवलम्बन श्री प्रभुदास भाई भी लिखते हैं–"जैन शास्त्रों मां गमे तेटलुं मिश्रण थयुं होय, उथल-पुथल थई होय...." सम्यग्दर्शन 5/8/1969।

स्वयं श्री डोशीजी भी जो अपने को शास्त्रों का बहुत बड़ा श्रद्धालु उद्घोषित करते रहते हैं, शास्त्रों के अक्षर-अक्षर को भगवद्वाणी नहीं मानते हैं। सम्यग् दर्शन, 5 सितम्बर 1969 में वे लिखते हैं–"दो भिन्न सूत्रों (उनका अभिप्राय चन्द्र-प्रज्ञप्ति और सूर्य प्रज्ञप्ति से है) के प्रारंभिक अंश के अतिरिक्त सारा विषय एक समान ही क्यों है? ... इन दोनों प्रज्ञप्तियों आदि का धार्मिक विषय से क्या सम्बन्ध है?.. जब ब्यावर में आगम संशोधन का कार्य प्रारंभ हुआ था तब स्व. श्री धीरज भाई के पत्र के उत्तर में मैंने कुछ सूत्रों का प्रकाशन नहीं करने की बात भी बताई थी।[1] जिनमें से प्रज्ञप्तियाँ भी थी।"

सम्यग् दर्शन, 20 सितम्बर 1969 में तो डोशीजी इस सम्बन्ध में बहुत ही स्पष्ट हो गए हैं–"यह ठीक है कि हमारे आगम पूर्ण रूप से वैसे नहीं रहे जैसे कि गणधर महाराज द्वारा रचे गये थे। प्रथम बार लिपिबद्ध हुए तब भी उनमें संकोच हुआ और पाठ भेद भी उत्पन्न हुए। वाचनाओं में भी भेद रहा। इसके बाद विभिन्न लिपिकारों से दृष्टि दोष, असावधानी आदि से भी कहीं कुछ परिवर्तन हुए होंगे और किसी-किसी ने जानबुझ कर भी परिवर्तन किये होंगे। हो सकता है कहीं किसी आचार्य कृत-ग्रन्थ का पाठ भी किसी ने प्रकरणानुकूल मान कर जोड़ दिया हो....।"

बात-बात पर शास्त्र श्रद्धा पुकार करने वाले डोशीजी की शास्त्रों के संबंध में क्या धारणा है, यह ऊपर उन्हीं की पक्तियों में स्पष्ट है। आश्चर्य है, ये लोग किस मुँह से मेरी आलोचना करते है? जो मैं कहता हूँ, वह ही ये लोग भी तो कहते हैं। फिर निन्दा और दुष्प्रचार किस बात का? क्या इसका यह अर्थ तो नहीं कि हम कहते हैं वह तो ठीक है। और यदि वही बात कोई दूसरा कहता है तो वह गलत है। मालूम होता है–मन में सफाई नहीं है। मन में पड़ी दुराग्रह की गाँठें अभी खुली नहीं हैं।

वर्तमान की बात नहीं है। शास्त्रों में प्रक्षेप एवं परिवर्तन के सम्बन्ध में प्राचीन काल के नवांगीवृत्तिकार आचार्य अभयदेव ने भी प्रश्न व्याकरण आदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्रों की अपनी टीकाओं में इस तथ्य को स्वीकार किया है। खरतर गच्छीय श्री जिनलाभ सूरि जैसे बहुश्रुतों ने भी आगमों में प्रक्षेप एवं परिवर्तन का उल्लेख किया है। यथाप्रसंग विद्वत्परिषद में कभी चर्चा हुई तो वे सब प्रमाण उपस्थित किए जा सकेंगे। मूल आगमों से भी परिवर्तन के तथ्य को प्रमाणित किया जायेगा।

प्रश्न—आपके चन्द्रयात्रा से सम्बन्धित चुनौती के लेख के उत्तर में कुछ सन्त और श्रावक यह कहते हैं कि अमेरिकन वैज्ञानिक चन्द्रमा पर नहीं, किसी पहाड़ पर उतर गए हैं और भ्रान्ति से उसे ही चन्द्रमा समझ रहे है? कुछ लोग कहते है कि यह दिखने वाला चन्द्रमा जिस पर अमेरिकन उतरे हैं, वह शास्त्र का चन्द्रमा नहीं है। शास्त्र का चन्द्रमा इससे भिन्न कोई और है?

उत्तर—यह सब कुछ सुनता तो मैं भी हूँ। सुना है, श्रद्धेय बहुश्रुत पं. समर्थमलजी महाराज भी ऐसा कहते हैं। वे उस पहाड़ का नाम भी बताते हैं—वैताढ्य पर्वत। और दूसरे सन्त तथा श्रावक भी ऐसी ही कुछ बातें करते हैं। मैं हैरान हूँ, यह सब किस विशिष्ट ज्ञान के आधार पर कहा जा रहा है। वैताढ्य पर्वत तो हमारी पौराणिक गाथा के अनुसार चाँदी का है, वहाँ पत्थर और काली भूरी मिट्टी कहाँ से आ गई, जो चन्द्रयात्री लाए हैं। हमारी पौराणिक मान्यता के अनुसार वैताढ्य पर्वत पर विद्याधर रहते है, पर वहाँ तो कोई विद्याधर नहीं मिला। वनस्पति का एक अंकुर तक तो मिला नहीं, आदमी कहाँ से मिलते। वहाँ तो हवा भी नहीं है।

चन्द्रयात्रियों ने अपने यान के द्वारा चन्द्रमा के ऊपर नीचे और नीचे से फिर ऊपर—इस प्रकार कई चक्कर लगाए हैं और जब पृष्ठ तल की ओर जाते थे तो यहाँ धरती पर के नियन्त्रण केन्द्र से टेलीविजन का सम्बन्ध कट जाता था। प्रश्न है—यदि वह चन्द्र नहीं, कोई पहाड़ ही है, जैसा कि सन्त कह रहे हैं, तो फिर पहाड़ के ऊपर नीचे चक्कर कैसे लगाये जा सकते हैं? पर्वत का मूल तो पृथ्वी के बहुत गहरे गर्भ में होता है, उसके नीचे से होकर कैसे निकला जा सकता है?

और यह बात तो बड़ी ही विचित्र है कि वैज्ञानिक उतरे तो है पहाड़ पर और भ्रान्ति से उसे चन्द्रमा समझ रहे हैं। जो वैज्ञानिक रेडियो एवं टेलीविजन जैसे अद्भुत चमत्कारों के आविष्कर्त्ता हैं, जिन्होंने वैज्ञानिक क्रान्ति के द्वारा विश्व को गत कुछ वर्षों में ही वह प्रगति दी है, जो इतिहास के हजारों वर्षों में कहीं देखी सुनी नहीं गई, उन्हें एवं उनके वंशधरों को इतना भी पता नहीं चला कि यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पहाड़ है या चाँद है। और हम हैं कि जिनके पास वस्तुस्थिति को जाँचने-परखने के कोई प्रत्यक्ष साधन नहीं हैं, केवल कुछ संकलित पोथियों के बल पर ही उन्हें भ्रान्त, झूठा एवं भ्रम फैलाने वाले कहते जा रहे हैं। लाखों-करोड़ों लोगों ने अपनी आँखों से जो सत्य देखा है, उसे सहसा असत्य उद्घोषित करने वालों के साहस का भी क्या कहना? कमाल हासिल है उनको अपने विश्वास पर ! बुद्धि का कुछ भी तो स्पर्श नहीं होने देते अपने विश्वास को।

अब रही यह बात कि शास्त्र का चन्द्रमा और है तथा दिखलाई देने वाला चन्द्रमा जिस पर अमेरिकन उतरे हैं, वह कोई और है! खेद है, शास्त्र श्रद्धा के नाम पर कितनी मिथ्या कल्पनाएँ की जाती हैं और भद्र जनता को अन्ध विश्वास मूलक भ्रान्त धारणाओं में उलझाया जाता है। यह जिन शासन की सेवा नहीं, कुसेवा है। एक दिन सत्य जनता के समक्ष आयेगा ही और तब उसके मन में विद्रोह का कितना बड़ा तूफान उठेगा कि इन धर्मगुरुओं ने हमें कितना भरमाया है और तब वह मुखर होकर कहेगी कि ये सब लोग झूठे हैं। इनके शास्त्र झूठे हैं और झूठे हैं इनके भगवान् भी।

मैं पूछता हूँ, जिसके कारण तिथियाँ होती हैं, पर्व होते हैं, कृष्ण और शुक्ल पक्ष होते हैं, जिसे ग्रहण लगते हैं, नक्षत्रों का योग होता है, वह चन्द्रमा तो यह ही है, जो आकाश में आँखों से दिखाई देता है। इसी पर वैज्ञानिक उतरे हैं, इसी के चित्र लिए गये हैं, इसी के टेलीविजन पर दृश्य देखे गए हैं और वहाँ से यहाँ बातें भी की है। यदि आपके शास्त्र का चन्द्रमा यह नहीं तो वह फिर कौन-सा है? ओर कहाँ है वह? और वह अदृश्य स्थिति में रहकर क्या काम करता है? क्या काम आता है हम लोगों के? अच्छा हो, कुछ कहने से पहले हम थोड़ा बहुत सोच-विचार लिया करें। समझ लिया करें। यों ही बेतुकी न हाँका करें, ताकि हमारा धर्म और दर्शन शिक्षित जनता की नजरों में उपहास का पात्र न हो।

हमारी बौद्धिक चेतना न मालूम कैसी है, जो प्रत्यक्षसिद्ध सत्य को भी स्वीकृत करने से प्रायः कतराती रहती है। हमारे कुछ ग्रन्थों में गंगा का वर्णन है, उसके प्रवाह की चौड़ाई लाखों मील की बताई गई है। वह प्रत्यक्ष में भारत की इस गंगा में मिलती नहीं है। वास्तविकता क्या है, एक समस्या खड़ी हो गई और हम उक्त समस्या के समाधान के लिए कहते हैं कि वह हमारी शास्त्रवाली गंगा और है, यह नहीं। वह शास्त्रवाली गंगा कहाँ है, यह अभी कुछ पता नहीं। होगी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहीं अदृश्य लोक में! जब यह गंगा नहीं तो इसमें मिलने वाली यमुना भी यह नहीं, कोई और है, सरयु भी कोई और है। इसी प्रकार गंडक भी और है, कोशी भी कोई और ही है। सब कुछ और हैं, यह नहीं हैं। फिर तो हस्तिनापुर, वाराणसी और पाटलिपुत्र आदि भी, जो इतिहास में गंगा तट पर बताये गए हैं, कोई और ही हैं, कहीं और ही अदृश्य जगह में हैं। यह और का सिलसिला इस गति से बढ़ रहा है कि यदि संभले नहीं तो यह हमें कहीं का नहीं छोड़ेगा। हमारा मजाक उड़वायेगा, हमारे धर्म को बुद्धू बनायेगा। मैं नहीं समझता, इस प्रकार व्यर्थ की मनगढंत बातें करने से धर्म का गौरव कैसे बढ़ता है, धर्मशास्त्रों की प्रतिष्ठा एवं श्रद्धा कैसे सुरक्षित रहती है?

प्रश्न—आप चन्द्रप्रज्ञप्ति आदि कुछ सूत्रों को पापश्रुत कैसे कहते हैं? पूज्य श्री हस्तीमलजी महाराज तो इससे इन्कार करते हैं।

उत्तर—चन्द्रप्रज्ञप्ति आदि ज्योतिष ग्रन्थों को मै। कहाँ पापश्रुत कहता हूँ? आपके हमारे वे आगम कहते हैं। समवायांग सूत्र कहता है[2], उत्तराध्ययन सूत्र कहता है[3] ओर प्रतिदिन सुबह-शाम पढ़ा जाने वाला आवश्यक सूत्र कहता है।[4] मैंने तो उसे ही दुहराया है, जो हमारे ये प्राचीन आगमकार कह गये हैं। यदि इस सम्बन्ध में कुछ उपालम्भ देने जैसा है, तो वह मुझे क्यों दें, उन आगमकारों को दें, जिन्होंने ज्योतिष आदि से संबंधित श्रुत को पापश्रुत कहा है।

मेरा तो इस सम्बन्ध में यही कहना है कि जब आगम के उल्लेखानुसार ज्योतिष ग्रन्थ पापश्रुत हैं तो फिर चन्द्रप्रज्ञप्ति भी एक ज्योतिष ग्रन्थ है, उसमें आध्यात्मिकता एवं धार्मिकता का उल्लेख अंश मात्र भी नहीं है, अतः वह भी पापश्रुत की ही कोटि में आता है। सत्य-सत्य है, उसकी दृष्टि में अपना-पराया कुछ नहीं होता। यह नहीं हो सकता कि दूसरों के ज्योतिष ग्रन्थ पापश्रुत हैं और हमारे धर्मश्रुत हैं।

आगमों के ही उल्लेखों से जब यह निश्चित है कि ज्योतिषग्रन्थ पाप श्रुत हैं, तब वीतराग भगवान् उनके उपदेष्टा कैसे हो सकते हैं? वीतराग तो वीतराग भाव का ही उपदेष्टा हो सकता है, जो जैसा है, वह वैसा ही तो उपदेश देगा। अपनेसे विपरीत कैसे उपदेश दे सकता है? एक ओर वीतराग भगवान् ज्योतिष को पापश्रुत बताएँ और दूसरी ओर उसी का विस्तार से वर्णन करें, उस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर लम्बे-चौड़े शास्त्रों की रचना करें, यह दुमुहापन वीतराग स्थिति में कैसे घटित हो सकता है?

आगमों में यत्र-तत्र ज्योतिष का, निमित्त शास्त्र आदि का प्रयोग करना, भिक्षु के लिए निषिद्ध है।[5] क्यों निषिद्ध है? इसीलिए तो निषिद्ध है न कि वह पापश्रुत है[6] उसका आध्यात्मिक साधना से कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि वह धर्मश्रुत होता तो उसका उपदेश एवं प्रयोग क्यों निषिद्ध होता?

मेरे कुछ मित्र भद्रबाहु स्वामी को निमित्त ज्ञानी बताकर ज्योतिषनिमित्त को धर्मश्रुत की कोटि में ले आना चाहते हैं। भद्रबाहु का निमित्त ज्ञान उनके दीक्षा पूर्व गृहस्थ जीवन का था। यह नहीं कि दीक्षित होने के बाद उन्होंने निमित्त शास्त्रों का अध्ययन एवं अभ्यास किया। उसका प्रयोग किया। भला, भद्रबाहु जैसे महान् तत्त्वद्रष्टा आचार्य साधु धर्म के विपरीत आचरण कैसे कर सकते थे? अपने युग के महान् दार्शनिक एवं साधक को निमित्तिया बताना, यह उनका अपमान नहीं तो क्या है?

पूज्य श्री हस्तीमलजी महाराज ने ज्योतिष ग्रन्थों को पापश्रुत मानने से साफ इन्कार नहीं किया है। वे कर भी नहीं सकते हैं। मूल आगम में जब उन्हें पापश्रुत कहा है, तो उसे कैसे झुठला सकते हैं। हाँ, उन्होंने उडाऊ उत्तर अवश्य दिया है, जिसकी उनसे मुझे कभी अपेक्षा नहीं थी। पूज्य श्री कहते हैं कि सम्यग् दृष्टि के लिए पापश्रुत भी सम्यक् श्रुत हो जाता है। और इसके लिए उन्होंने नन्दीसूत्र का एक पाठांश उद्धृत किया है। नन्दीसूत्र में सम्यक् श्रुत और मिथ्या श्रुत की चर्चा है, पापश्रुत और धर्मश्रुत की नहीं। वहाँ पर यह नहीं कहा है कि पापश्रुत धर्मश्रुत हो जाता है। यदि पापश्रुत धर्मश्रुत हो जाता है तो फिर आगमों में साधु के लिए उसका निषेध क्यों किया जाता? मूल प्रश्न दृष्टि का नहीं, वस्तु का है। ज्योतिष आदि के ग्रन्थ मूल में क्या है, यह देखना है। यदि वे मूल में पापश्रुत नहीं है, तो फिर आगमकार उनकी गणना पापश्रुतों में क्यों करते है? आचारांग आदि सम्यक् श्रुत भी मिथ्या दृष्टि के लिए मिथ्याश्रुत हो जाते है। क्या इस पर से यह अर्थ लगाया जाए कि आचारांग आदि सम्यक्श्रुत नहीं हैं? उन्हें सम्यक्श्रुत कहना गलत है। यदि ऐसा है तो फिर उनकी गणना सम्यक्श्रुत में क्यों की गई है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न–आगमों में बहुत से वर्णन केवल ज्ञेय रूप में ही किए गए हैं। उन्हें मात्र जानना है, न वे हेय हैं और न वे उपादेय हैं। ज्योतिष का वर्णन भी भगवान् ने केवल जानकारी के लिए ज्ञेय रूप में ही किया है। पूज्य श्री हस्तीमलजी महाराज का भी ऐसा ही कुछ अभिप्राय है।

उत्तर–पूज्य श्री ही क्यों, अन्य भी बहुत से मुनिवरों का ऐसा ही कहना है। एक वरिष्ठ मुनिराज ने कहा है कि शास्त्र समुद्र हैं।[7] समुद्र में रत्न हैं, मोती हैं, तो साथ ही कंकड़-पत्थर, मगरमच्छ भी हैं, खारा जल भी है। हमें मोती और रत्न चुन लेने चाहिए। कंकड़-पत्थर, मगरमच्छ आदि तो बस जान लें, उन्हें न उपादेय समझे और न हेय। मुझे आश्चर्य होता है इस उथले चिन्तन पर। एक ओर तो शास्त्रों को धर्मावतार भगवान् की वाणी मानना और दूसरी ओर उसे कंकड़-पत्थर तथा मगरमच्छ आदि जैसे अनुपयोगी वर्णनों का केवल ज्ञेय रूप से अस्तित्व भी स्वीकार करना, अपने में कितना परस्पर विरुद्ध एवं असंगत कथन है।

पूज्य श्री ने ज्योतिष के साथ स्वर तथा स्वप्न आदि के वर्णनों को भी ज्ञेय रूप में शास्त्रीय करार दिया है। बहुत कुछ विचारने के बाद भी मुझे यह ध्यान में नहीं आता कि जिन वर्णनों से हमें कुछ लेना-देना नहीं है, जिनका प्रयोग साधकों के लिए निषिद्ध है, उनका केवल ज्ञेय रूप में अध्ययन करना, व्यर्थ ही अपना अमूल्य समय उनके चिन्तन-मनन, में व्यय करना, कहाँ की बुद्धिमत्ता है। साधक के लिए एक आत्मा ही 'स्व' है, शेष 'पर' है। पर की जानकारी 'स्व' को समझने के लिए है, भेद विज्ञान के लिए है, विरति के लिए है।[8] देहादि जड़ तत्त्व से भिन्न चैतन्य तत्त्व को समझने के लिए ही देहादि पर को जड़ रूप में जानना है। केवल ज्ञेय के लिए–सिर्फ जानकारी के लिए, जिनका उपादेय या हेय से कोई सम्बन्ध नहीं है, ऐसे पहाड़ों का, नदी-नालों का, सागरों का, चन्द्र-सूर्य-नक्षत्रों का, स्वप्नों का, स्वरों का ज्ञान करना साधक के लिए क्या अर्थ रखता है। आखिर ज्ञानार्जन का कोई उद्देश्य तो होना चाहिए।[9] यदि कोई व्यक्ति पराये घर की बहू, बेटी आदि की जानकारी लेने के लिए घर-घर पूछता फिरे और कोई उससे पूछे कि आपका इससे क्या मतलब है और उत्तर में यदि वह यह कहे कि कुछ मतलब नहीं, यों ही जानकारी के लिए पूछ रहा हूँ तो आप उसे क्या कहेंगे? यही न कहेंगे कि आप पागल हो गए हैं क्या? यों ही बिना मतलब की जानकारी से आपको क्या करना है? संस्कृत साहित्य में ऐसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जानकारों का कटु परिहास किया गया है कि एक व्यक्ति गधे के रोम (बाल) गिन रहा था। पूछा गधे के बाल क्यों गिन रहे हैं? उत्तर मिला, कुछ नहीं, जानकारी के लिए गिन रहा हूँ कि इस गधे के शरीर पर कितने बाल हैं? इस प्रकार की जानकारी को आचार्य ने मूर्खता बताया है–**'गर्दभे कति रोमाणीत्येषा मूर्ख विचारणा।'**[10]

यदि ज्ञेय रूप में सिर्फ ज्ञान के लिए ही ज्योतिष ज्ञान की उपादेयता है साधक के लिए, तब तो एक ज्योतिष ही क्यों, रसायन, चिकित्सा, वाणिज्य, युद्ध, कामशास्त्र आदि का भगवान् को उपदेश देना चाहिए था, उन विषयों की जानकारी के लिए भी ग्रन्थों की रचना होनी चाहिए थी। सम्यग् दृष्टि के लिए वे भी सम्यक् श्रुत होते, विष न होकर अमृत होते। उक्त तर्क का सीधा और स्पष्ट भाव यह है कि अध्यात्म साधक के लिए विधि निषेध से शून्य कोरे ज्ञेय का कोई अर्थ नहीं है। इसलिए निशीथ सूत्र में इस प्रकार के रूप-दर्शनों का निषेध है।

प्रश्न–विज्ञान अधूरा है। वैज्ञानिकों ने पहले कुछ स्थापना की और बाद में कुछ और ही। उनकी बहुत सी बातें बदल गई हैं। उनकी चन्द्रलोक की बात भी आगे चलकर गलत सिद्ध हो सकती है? अभी तो उन्होंने खोज शुरू ही की है।

उत्तर–विज्ञान किस बात में अधूरा है? प्रकृति अनन्त है, उसका पूर्ण रूप से निरीक्षण अभी नहीं हो पाया है, क्या इसीलिए विज्ञान अधूरा है, अपूर्ण है? तब तो शास्त्र भी अधूरे हैं, अपूर्ण हैं। भगवान् का अनन्त ज्ञान, जड़-चेतन का अनन्त रहस्य समग्र रूप से उन्हीं में कहाँ वर्णित हो पाया है। प्राचीन आचार्यों ने कहा है, केवँल ज्ञान के अनन्त सागर का एक बिन्दु मात्र जितना भी ज्ञान शास्त्रबद्ध नहीं हुआ है। यदि इस तरह शास्त्र अपूर्ण हैं तो विज्ञान भी अपूर्ण है। फिर केवल विज्ञान पर ही अपूर्णता का दोष क्यों? पूर्ण तो एकमात्र केवलज्ञान है और कोई ज्ञान नहीं।

वैज्ञानिकों ने पहले कुछ माना और बाद में कुछ और ही माना, इसलिए विज्ञान अधूरा या असत्य है, यह कहना ठीक नहीं है। वैज्ञानिक पहले केवल धारणा बनाते हैं, अन्दाज लगाते हैं और कहते हैं कि ऐसी सम्भावना है। बाद में प्रयोग करते हैं, जाँच करते हैं, फिर प्रत्यक्ष सिद्ध होने पर परीक्षित वस्तु के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्बन्ध में अपना वास्तविक निर्णय घोषित करते हैं। परीक्षा करने पर कभी पूर्व निर्धारित सम्भावनाएँ ठीक प्रमाणित होती हैं, कभी ठीक नहीं भी होती हैं। वैज्ञानिकों की सच्चाई यह है कि सम्भावना सत्य सिद्ध न होने पर वे तत्काल घोषित करते हैं कि हमारी सम्भावना सही नहीं प्रमाणित हुई। हम लोगों की कैसी मनःस्थिति है कि वैज्ञानिक जिसे सम्भावना कहते हैं, हम उसे पूर्ण सत्य मान लेते हैं और जब वे कहते हैं कि सम्भावना ठीक नहीं निकली, प्रत्यक्ष से प्रमाणित नहीं हुई, तब हम कहते हैं कि देखो, वैज्ञानिकों की बात झूठी हो गई। रेडियो, टेलीविजन आदि के अनेक आविष्कार आज जब प्रत्यक्ष में सिद्ध हो गये है। तो क्या वे भविष्य में कभी गलत भी होंगे? अग्नि प्रत्यक्ष में उष्ण प्रमाणित हो गई है तो क्या यह भी कभी असत्य सिद्ध होगी? अधूरा तर्क देकर जनता को भ्रम में डालना, किसी भी तरह उचित नहीं कहा जा सकता।

और यह चन्द्रमा की सतह पर उतरने और वहाँ से पत्थर मिट्टी लाने की बात कौन सी अपूर्ण विज्ञान की बात है? वैज्ञानिकों ने तीव्र गति के राकेट यानों का आविष्कार किया, पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से मुक्त होने की प्रक्रिया खोज निकाली, चन्द्र तल पर हवा न रहने के कारण वहाँ प्राणवायु आदि ले जाने की व्यवस्था की और अपनी योजना के अनुसार चन्द्रमा पर पहुँच गए। वहाँ जो कुछ आँखों से देखा, उसका विवरण जनता के सामने रखा। चन्द्र की ओर जाना, चन्द्र की सतह पर उतरना और फिर सकुशल लौट आना, मुक्त रूप से लाखों-करोड़ों जनता को दिखा दिया। अब इसमें क्या अधूरापन है? भविष्य की खोज से आज का सत्य कल कैसे असत्य होने वाला है? क्या आप यह आशा रखते हैं कि कुछ दिनों बाद वैज्ञानिक यह कहेंगे कि अरे भूल हो गई। हम चन्द्रमा पर नहीं, एक पहाड़ पर उतर गये थे और उस पहाड़ को ही हमने भूल से चन्द्रमा समझ लिया था। यदि ऐसी कुछ आशा रखते हैं तो आप भ्रम में है। आज 20 नवम्बर है, इध र मैं लेख लिख रहा हूँ और उधर अपोलो 12 के चन्द्रयात्री चाँद की सतह पर घूम रहे हैं। लाखों लोग धरती पर से उन्हें देख रहें और अभी-अभी एक भाई सूचना दे रहे हैं कि अपोलो 12 के चन्द्रयात्री अपने साथ चाँद सतह से पत्थर तो ला ही रहे हैं, साथ ही वे उस मानव रहित सर्वेयर-3 अन्तरिक्ष यान के कुछ हिस्से भी लेकर आ रहे हैं, जो ढाई वर्ष पूर्व अमरीका द्वारा चाँद पर उतारा गया था।

खोज चालू रहने का यह अर्थ तो नहीं कि कल वह चन्द्रमा नहीं रहेगा? कुछ और हो जायेगा। वैसे तो खोज अभी पृथ्वी की भी कहाँ पूर्ण हुई है। परन्तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह पृथ्वी है और इसकी अमुक स्थिति है, प्रकृति है, यह तो सिद्ध हो चुका हैं यही बात चन्द्रमा के सम्बन्ध में हैं वह आपका विमान नहीं, पत्थर की चट्टानों, पहाड़ों और गर्तों का एक वीरान प्रदेश हैं वहाँ आपके देवी-देवता कोई नहीं मिले, न विमान के उठाने वाले हाथी, घोड़े, बैल और सिंह ही कहीं दिखाई दिये। कल्पना के आधार पर लिखे गए इन ग्रन्थों को आप क्यों भगवद्वाणी मान रहे हैं? और इसके लिए व्यर्थ ही क्यों परेशान हो रहे हैं? क्यों तर्कहीन तर्क देकर बचाव की लड़ाई लड़ रहे हैं। आपको क्या लेना-देना है इन चन्द्र प्रज्ञप्तियों से? आपके भगवान् की सर्वज्ञता को कहाँ चोट लगती है, यदि आपने इन शास्त्रों को भगवद्वाणी नहीं माना तो? चोट तो इन्हें भगवद्वाणी मानने से लगती है, न मानने से नहीं।

प्रश्न–आपने अपने लेखों में जोधपुर चर्चा का कितनी ही बार उल्लेख किया है और कहा है कि जोधपुर में सर्व सम्मति से अंग बाह्य शास्त्र, जिनमें प्रज्ञप्ति आदि भी हैं, परतः प्रमाण माने गये हैं, अर्थात् साक्षात् भगवद् वाणी उन्हें नहीं माना है। इस सम्बन्ध में जोधपुर चर्चा में भाग लेने वाले दूसरे मुनिराज मौन क्यों हैं?

उत्तर–यही तो आश्चर्य है ! सत्य का तकाजा तो यह है कि जो व्यक्ति जिस निर्णय से सम्बन्धित हों, यदि उस सम्बन्ध में कभी कोई चर्चा चले तो उन्हें वास्तविक स्थिति की स्पष्ट घोषणा करनी चाहिए। मुझे आशा थी कि चर्चा से सम्बन्धित मुनि ऐसा करेंगे। परन्तु मेरी ओर से बार-बार जोधपुर चर्चा का उल्लेख होने पर भी सम्बन्धित मुनिराज मौन हैं–न इकरार और न इन्कार। इन्कार तो कैसे कर सकते हैं, सत्य महाव्रती सन्त जो हैं। फिर इकरार क्यों नहीं? यह मैं क्या बताऊँ? उन्हीं से पूछिए न। हाँ, '**मौनं स्वीकृतिलक्षणम्**' के सिद्धान्त सूत्र से यदि आप वास्तविकता का दर्शन कर सकें तो बात दूसरी है।

प्रश्न–पूज्य श्री हस्तीमलजी महाराज बार-बार उक्त विवादास्पद चन्द्रयात्रा संबंधी वैज्ञानिक उपलब्धियों की जैन शास्त्रों के साथ समन्वय एवं संगति बिठाने की बात करते हैं। इस सम्बन्ध में आपका क्या अभिमत है?

उत्तर–पूज्य श्री संगति बिठा सकते हैं तो बिठाएँ। मुझे इससे क्या आपत्ति है? वेसे मैं भी कुछ शब्दों की आध्यात्मिक अर्थ में संगति बिठा सकता हूँ। परन्तु ये जो भूगोल-खगोल संबंधी लम्बे चौड़े वर्णन हैं, ग्रन्थ हैं, भला इनके अक्षर-अक्षर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की वैज्ञानिक उपलब्धियों के साथ कैसे संगति बिठाई जा सकती है? मैं तो नहीं बिठा सकता। यदि कोई बिठाये तो आभारी रहूँगा हृदय से।

रामायण तथा महाभारत आदि की प्रचलित लोक कथाओं की, जैनाचार्यों ने अर्थ बदलकर जो कतिपय संगतियाँ बिठाई हैं, उनमें कुछ तो बिलकुल अर्थहीन हैं, काल्पनिक है। ऐसी संगतियाँ किस काम की, जो अधूरी हों, अविश्वसनीय हों, फलतः शिक्षित जगत् में उपहासास्पद हों। संगति वस्तुतः संगति होनी चाहिए। यह न हो कि संगतियों के व्यामोह में हम कहीं और अधिक असंगतियों के चक्रव्यूह में जा फँसे। '**विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामास वानरम्**'—लगे थे गणेश जी बनाने और बना बैठे बन्दर !

प्रश्न—आपके क्रान्तिकारी लेखों से जनता में शास्त्रों के प्रति अनास्था एवं अश्रद्धा फैलने की आशंका है, ऐसी धारणा है मुनिराजों की।

उत्तर—शास्त्र श्रद्धा के सम्बन्ध में किसकी क्या धारणा है, इसका उत्तर तो मेरे पास नहीं है। पर, मैं अपनी बात कह सकता हूँ, मेरी श्रद्धा अटल है, अचल है। किन्तु वह है शास्त्रों के प्रति, ग्रन्थों के प्रति नहीं। वीतराग वाणी ही शास्त्र है। और वीतराग वाणी वह है, जो सुप्त आत्माओं को जागृत करती है, विषयासक्ति को तोड़ती है, आत्मा को अन्तर्मुख बनाती है। इसके अतिरिक्त जिनमें धर्म चर्चा एवं आत्म चर्चा का लेशमात्र भी अंश नहीं है, वे भूगोल-खगोल से सम्बन्धित ग्रन्थ हैं और वे छद्मस्थ आचार्यों द्वारा रचित हैं। आज विज्ञान उन्हें असत्य सिद्ध कर चुका है, कर रहा है। अतः मेरा प्रयत्न भगवान् महावीर तथा उनकी आध्यात्म वाणी के प्रति जन श्रद्धा को सुरक्षित करना है। इन ग्रन्थों के प्रति अश्रद्धा तो उसी दिन से फैल रही है, जिस दिन से विज्ञान ने अपना चमत्कार दिखाना शुरू किया है। आज भगवान् की वाणी के प्रति जनमानस में जो भ्रान्त धारणाएँ फैल रही हैं, मैं उन्हें साफ कर रहा हूँ। शास्त्र और ग्रन्थ की भेदरेखा खींचकर भगवान् और उनके द्वारा प्ररूपित धर्मशास्त्र के प्रति श्रद्धा को सुरक्षित कर रहा हूँ।

प्रश्न—आपको क्रान्ति लानी है तो समाज और धर्म संप्रदाय में अनेक कुरीतियाँ प्रचलित हैं, उन पर आक्रमण कीजिए, जिससे समाज का हित हो। पूज्य श्री का आपके लिए यह संकेत है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर—पूज्य श्री का मेरे लिए यह संकेत ही नहीं, सन्देश है और इसका हृदय से अभिनन्दन करता हूँ। समाज सुधार के लिए मेरे प्रयत्न बहुत पहले से चालू हैं। बाल विवाह, वृद्ध विवाह, दहेज, मृत्यु भोज, पर्दा, जातिवाद, आहार शुद्धि, सामाजिक एवं धार्मिक आडम्बर आदि सामाजिक कुप्रथाओं के लिए मैंने निर्भयता के साथ अपने विचार प्रकट किए हैं, ओर अमुक अंश में उनके अच्छे परिणाम भी आए हैं। कुछ प्रसंगों पर तो मैंने सुधार के लिए स्वयं भी सक्रिय भाग लिया है, उसके लिए आलोचना भी कम नहीं हुई है। किन्तु शान्त भाव से सब कुछ सहते हुए मैंने अपने प्रयत्न चालू रखे हैं। भविष्य में इसके लिए और भी अधिक ध्यान देने के भाव हैं। कुप्रथाएँ अधिकतर अन्ध-विश्वास के सहारे खड़ी होती हैं और मेरा यह वर्तमान प्रयत्न अन्धविश्वास को ध्वस्त करने के लिए है। इस प्रकार यह चालू चर्चा भी समाज सुधार का ही एक अंग है।

प्रश्न—आपकी यह चर्चा अब और कब तक चालू रहेगी? विपक्ष की ओर से तो अभी तक विरोध में कोई खास तर्क एवं प्रमाण उपस्थित नहीं किए जा सके हैं।

उत्तर—मैं चाहता था, चर्चा का स्तर ऊँचा उठेगा और उसमें विद्वान मुनिराज तथा गृहस्थ खुलकर भाग लेंगे। पर, ऐसा कुछ नहीं हुआ। यह ठीक है कि मेरे विचारों ने जिज्ञासु जन मानस को प्रभावित किया है, कुछ तटस्थ विचारों को भी आकृष्ट किया है। इस सम्बन्ध में प्रशंसापत्रों का प्रवाह अभी तक चला आ रहा हैं परन्तु इसके साथ विरोध भी कुछ कम नहीं हुआ है। विरोध में इधर-उधर मौखिक चर्चाएँ खूब हुई है, जो केवल निन्दा का ही एक निम्नस्तरीय प्रकार है। कुछ महानुभावों ने लिखा भी है, परन्तु वह प्रमाण पुरःसर नहीं था। अधिकतर उसमें धर्म और श्रद्धा के खतरे का नारा ही मुखर था, जो आज हर संप्रदाय में बहुत सस्ता हो गया है। बार-बार एक जैसी ही बातें दुहराई जाती हैं, फलतः उत्तर में मुझे भी बार-बार पुरानी बातों को ही दुहराना पड़ता है, चर्चा की गति आगे नहीं बढ़ पाती है। अतः मैं पाठकों का अमूल्य समय व्यर्थ में नष्ट नहीं करना चाहता। इस कारण प्रस्तुत चर्चा को विराम दे रहा हूँ। भविष्य में यदि किसी विशिष्ट विद्वान् की ओर से कोई खास विचार या लेख इस सम्बन्ध में उपस्थित हुआ तो उत्तर दूँगा, अन्यथा नहीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विद्वत्परिषद् के आयोजन का भी एक विचार चल रहा है। यदि प्रमुख विचारक मुनिराजों एवं विद्वानों की विद्वत्परिषद् आयोजित हो सकी तो मैं उसमें यथावसर सहर्ष भाग लेने का भाव रखता हूँ। बन्द कमरे की परिषदें और चर्चाएँ, मुझे बेकार लगती हैं। जो भी चर्चा हो, सार्वजनिक हो एवं लिखित हो, और वह सर्वसाधारण की जानकारी के लिए प्रकाशित की जाए! कम से कम जिज्ञासु जनता इस पर से इतना तो समझ सके कि विचार-चर्चा का स्तर कैसा है, और वह किस दिशा में है?

संदर्भ :-

1. यदि वह भगवद् वाणी है तो उसमें ऐसा क्या है, जो प्रकाशन के योग्य नहीं है और इस प्रकार छिपा कर उन्हें कब तक रखा जा सकता है। स्व. पूज्य श्री अमोलक ऋषिजी और श्री सागरानंद सूरि आदि ने उन्हें बहुत पहले ही प्रकाशित कर दिया हैं
2. समवायांग 29 वाँ समवाय।
3. उत्तध्ययन31/19
4. आवश्यक सूत्र, श्रमण सूत्र।
5. उत्तराध्ययन 8/13
   उत्तराध्ययन 15/7
6. पापोपादानानि पापश्रुतानि... यो भिक्षुयतते तत्परिहारद्वारतः।
   --उत्त. बृहद्वृत्ति 31/16
7. शास्त्रों को समुद्र की उपमा केवल उनके तत्त्व चिन्तन की गहराई को लक्ष्य में रखकर दी गई है। उसका यह अर्थ नहीं कि समुद्र के मगरमच्छ आदि का सब कूड़ा-करकट शास्त्रों में समाहित कर लें।
8. ज्ञानस्य फलं विरतिः। —आचार्य उमा स्वाति
9. सम्बन्धाभिध्येय शक्यानुष्ठानेष्ट प्रयोजनवन्तिं हि शास्त्राणि प्रेक्षावद्भिराद्रियन्ते नेतराणि।
   —प्रमेयकमल मार्तण्ड, पृ. 2
   केवलस्य सुखोपेक्षे, शेषस्यादानहानधीः। —न्यायावतार, 28
10. प्रमेयकमल मार्तण्ड टिप्पण पृ. 2

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org